भगत कबीर – सबद २२

पिंडि मूऐ जीउ किह घरि जाता ॥

रागु गउड़ी, भगत कबीर, गुरु ग्रंथ साहिब, ३२७

पिंडि मूऐ जीउ किह घरि जाता ॥
सबदि अतीति अनाहदि राता ॥
जिनि रामु जानिआ तिनहि पछानिआ ॥
जिउ गूँगे साकर मनु मानिआ ॥१॥
ऐसा गिआनु कथै बनवारी ॥
मन रे पवन दृड़ सुखमन नारी ॥१॥ रहाउ ॥
सो गुरु करहु जि बहुरि न करना ॥
सो पदु रवहु जि बहुरि न रवना ॥
सो धिआनु धरहु जि बहुरि न धरना ॥
ऐसे मरहु जि बहुरि न मरना ॥२॥
उलटी गंगा जमुन मिलावउ ॥
बिनु जल संगम मन महि न्हावउ ॥
लोचा समसरि इहु बिउहारा ॥
ततु बीचारि किआ अवरि बीचारा ॥३॥
अपु तेजु बाइ पृथमी आकासा ॥
ऐसी रहत रहउ हरि पासा ॥
कहै कबीर निरंजन धिआवउ ॥
तितु घरि जाउ जि बहुरि न आवउ ॥४॥१८॥

सार: चेतना का मूल स्वरूप भौतिक रूप के साथ आरंभ या अंत नहीं होता। शरीर के बनने से पहले और उसके पंच-तत्वों में विलीन होने के बाद भी, जागरूकता का आधार जन्म और विनाश से अछूता रहता है। शरीर अस्थायी है, जिसके माध्यम से सार्वभौमिक चेतना स्वयं का अनुभव करती है।

क्षणभंगुर पहचान से स्थायी एकता की ओर बढ़ना यह समझना है कि चेतना का मूल स्वरूप उस शाश्वत एकत्व की अभिव्यक्ति है जो न तो उत्पन्न और न ही लुप्त होती है। यह गहन जागरूकता अकसर शब्दों में व्यक्त नहीं की जा सकती क्योंकि यह प्रत्यक्ष अनुभव से उत्पन्न होती है और शब्दों की सीमाओं से आगे चली जाती है।

पिंडि मूऐ जीउ किह घरि जाता ॥
जब भौतिक शरीर नष्ट होता है तब सजीव चेतना कहाँ जाती है। यह शरीर के बनने से पहले और उसके बाद, चेतना के अंतर्निहित स्वरूप और सार के अस्तित्व के प्रश्न को जन्म देता है।

सबदि अतीति अनाहदि राता ॥
यह अभिव्यक्तियों से दूर, आंतरिक प्रतिध्वनि में लीन है जो बिना उत्पन्न हुए विद्यमान है। यह अनुभव के ऐसे आयाम को प्रकट करता है जो भाषा, अवधारणाओं और इंद्रिय बोध से परे है।

जिनि रामु जानिआ तिनहि पछानिआ ॥
जो भी सर्वव्यापी उपस्थिति को पहचानता है, वह अपने सार को जान लेता है। यह समझ हमारे भीतर के पालनहार स्रोत को प्रकट करती है जिससे हमें अपने अस्तित्व को समझने में मदद मिलती है।

जिउ गूँगे साकर मनु मानिआ ॥१॥
जैसे कोई व्यक्ति जो बोल नहीं सकता, उसने चीनी का स्वाद चखा हो लेकिन भीतर से उसकी मिठास जानता हो। यह दर्शाता है कि अस्तित्व के गहन सत्य अकसर अभिव्यक्ति से परे होते हैं क्योंकि वह केवल शब्दों से नहीं बल्कि प्रत्यक्ष अनुभव से उत्पन्न होते हैं। (१)

ऐसा गिआनु कथै बनवारी ॥
सर्वव्यापी सत्ता के संबंध में ऐसा ही ज्ञान प्रकट किया जाता है। यह संकेत करता है कि सच्चा ज्ञान केवल उधार लिए गए विश्वासों का संग्रह नहीं है जिन्हें दूसरों के सामने सही सिद्ध किया जाए बल्कि यह रूपांतरित और जागृत आंतरिक जीवन की जीवंत अभिव्यक्ति है।

मन रे पवन दृड़ सुखमन नारी ॥१॥ रहाउ ॥

हे मन, अपने भीतर की श्वास को उस सूक्ष्म मार्ग में स्थिर करो जहाँ चंचल ऊर्जा संतुलित होकर स्थिरता प्राप्त करती है। यह ऐसी सजगता की ओर संकेत करता है जिसमें मन विरोधी प्रवृत्तियों के बीच निरंतर डोलना बंद कर देता है और भीतर संतुलित शांति में स्थिर होने लगता है। (१)(विराम)

सो गुरु करहु जि बहुरि न करना ॥

उस प्रकाश देने वाले ज्ञान को अपना मार्गदर्शक बनाओ, जिसके बाद किसी अन्य बाहरी सहारे की ज़रूरत न रहे। यहाँ अंतिम गुरु उस आंतरिक जागरूकता को माना गया है जो ऐसा स्थायी परिवर्तन लाती है कि मन बार-बार ज्ञान की खोज में भटकता नहीं रहता।

सो पदु रवहु जि बहुरि न रवना ॥

उस सच में स्थिर रहो जिसे जान लेने के बाद किसी और आश्रय में मन लगाने की ज़रूरत नहीं रहती। यह स्पष्टता ऐसी स्थिरता देती है कि मन उन भ्रमों में वापस नहीं भटकता जिनसे वह ऊपर उठ चुका है।

सो धिआनु धरहु जि बहुरि न धरना ॥

उस ध्यान में स्वयं को स्थापित करो जिससे बार-बार विचलित न होना पड़े। यह सहज जागरूकता पर ध्यान केंद्रित करने की ओर संकेत करता है जो कोई ज़बरदस्ती किया जाने वाला काम नहीं बल्कि मन की स्वाभाविक अवस्था है।

ऐसे मरहु जि बहुरि न मरना ॥२॥

ऐसे मरें कि फिर दोबारा मरना न पड़े। यहाँ मृत्यु का अर्थ शारीरिक मृत्यु नहीं बल्कि मानसिक पीड़ा, नकारात्मकता और क्षणभंगुरता के अंत से है। जब यह समाप्त होते हैं तब भीतर सिर्फ़ स्थायी सकारात्मकता बचती है। (२)

उलटी गंगा जमुन मिलावउ ॥
गंगा उलटी बहकर यमुना से मिलती है। यह सोच और अनुभव की सामान्य दिशा के उलट जाने का प्रतीक है जहाँ दिखाई देने वाली विरोधी धाराएँ जैसे, स्वयं और अन्य, एक ही चेतना में एकत्व का अनुभव करती हैं।

बिनु जल संगम मन महि न्हावउ ॥
संगम के पानी के बिना, मन में स्नान करें। यह आंतरिक तीर्थ-यात्रा की ओर इशारा करता है जहाँ वास्तविक शुद्धि बाहरी स्थान पर जाने से नहीं बल्कि अपने मन और इरादों को निर्मल करने से होती है तथा विविधता के भीतर एकत्व अनुभव होता है।

लोचा समसरि इहु बिउहारा ॥
आंतरिक संतुलन इस प्रकार के जीवन की चाह करती है। यह समभाव उस स्थिति को दर्शाता है जहाँ अंतरात्मा जीवन के अनुभवों को अलग-अलग बाँटना बंद कर देती है और हर अनुभव में एक ही गहन सत्ता की उपस्थिति को पहचानने लगती है।
ततु बीचारि किआ अवरि बीचारा ॥३॥
जब मूल तत्व पर ही ध्यान केंद्रित हो जाता है तब फिर सोचने को और क्या रह जाता है। यह बेचैन करने वाली अटकलों के अंत का संकेत है जहाँ ध्यान पूरी तरह से भीतर की ओर केंद्रित हो जाता है। (३)

अपु तेजु बाइ पृथमी आकासा ॥
जल, अग्नि, वायु, पृथ्वी और आकाश। यह वह मौलिक क्षेत्र है जिससे शरीर, मन और संसार का अस्तित्व प्रकट होता है।

ऐसी रहत रहउ हरि पासा ॥
इस प्रकार वह सर्वव्यापी शक्ति सभी दिशाओं में व्याप्त रहती है। यह दर्शाता है कि मौलिक तत्व ही साकार अस्तित्व के संपूर्ण क्षेत्र के रूप में प्रकट होते हैं।

कहै कबीर निरंजन धिआवउ ॥

कबीर कहते हैं, मैं उस निर्मल, सर्वव्यापी सत्य का ध्यान करता हूँ। यह उस निर्विकार सत्य का प्रतीक है जो माया, अहंकार और प्रकट संसार के बदलते गुणों से अछूता रहता है।

तितु घरि जाउ जि बहुरि न आवउ ॥४॥१८॥

मैं उस घर की ओर यात्रा करता हूँ जहाँ से फिर कभी लौटना नहीं पड़ता। यह आंतरिक निवास का संकेत है जहाँ व्यक्ति एकत्व के अपने वास्तविक आधार को पहचानता है और अलगाव के भ्रम में जीने की स्थिति में वापस नहीं लौटता। (४)(१८)

तत्त्व: भगत कबीर ऐसी आंतरिक यात्रा की बात करते हैं जो मन को स्थिरता और समभाव की ओर ले जाती है। जैसे-जैसे यह यात्रा आगे बढ़ती है, अंतरात्मा पूर्णता का अनुभव करती है और उस गहरी सत्ता को पहचानती है जो पूरी सृष्टि में व्याप्त है। मन अपना संतुलन बनाए रखता है क्योंकि उसकी पहचान का आधार बदलती हुई परिस्थितियों के बजाय उस शाश्वत एकता में निहित होता है जो सदैव बनी रहती है। जैसे-जैसे अलगाव का भ्रम दूर होता है, करुणा और विवेक स्वाभाविक रूप से गहरे होते जाते हैं। परिणामस्वरूप, समभाव उस चेतना की शांत अभिव्यक्ति के रूप में प्रकट होता है जो जीवन के सभी रूपों को समाहित करने वाली अखंड एकता के प्रति जागृत हो चुकी है।

सबद व्याख्या **विनइंदर कौर** और **अमरदीप सिंह**

Oneness In Diversity Research Foundation

वेबसाइट: OnenessInDiversity.com

ईमेल: onenessindiversityfoundation@gmail.com